वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

ओ३म् क्रतो स्मर ।

वर्ष–6, अंक–8 | अप्रैल 2013 | चैत्र
सृष्टि संवत् 1960853114 | विक्रमी संवत् 2070 | दयानन्दाब्द 190

नव वर्ष विक्रमी संवत् 2070
तथा
आर्यसमाज स्थापना दिवस
के अवसर पर
हार्दिक शुभकामनाएँ !

सम्पादक

मूलचन्द गुप्त

ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली-110045

ओ३म्

ओ३म्–सुप्रभा

वैदिक सभ्यता–संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

• *परामर्श*

डॉ० धर्मपाल आर्य
(पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार)
ए/एच–16, शालीमार बाग,
दिल्ली–110088
दूरभाष–011-27472014
011-27471776

• *सम्पादक*

मूलचन्द गुप्त
(पूर्व प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली)

• *प्रकाशक*

मूलचन्द गुप्त,
अध्यक्ष, **ओम्–प्रतिष्ठान**
कुसुमालय, बी–1/27,रघुनगर,
पंखा रोड, नई दिल्ली–110045
दूरभाष–9650886070
011-25394083

ई-मेल-Ompratisthan@gmail.com

ओ३म्–सुप्रभा में प्रकाशित लेखों के सभी विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है । वे विचार लेखक के अपने हैं ।

प्रकाशक–मुद्रक–स्वामी–मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं० 17, कैलाशनगर, दिल्ली–31 (फोन–22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली– 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र–दिल्ली

उद्देश्य

- वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता का पोषण करना, वैदिक विचार–धारा के अनुसार मानव–निर्माण करना, समरस और समेकित समाज का संगठन करना, विश्व भर में सुख और शान्ति की स्थापना करने का प्रयास करना **ओम्–प्रतिष्ठान** का मुख्य उद्देश्य है ।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर विभिन्न बहुआयामी गतिविधियों का संचालन किया जाएगा ।
- रचनात्मक और प्रेरक साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण का, इन गति–विधियों में प्रमुख स्थान होगा ।
- इस पत्रिका में समय–समय पर आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, नैतिक, वैश्विक चेतना जागृत करने से सम्बन्धित विषयों पर मौलिक लेख तथा समाचार प्रकाशित किए जायेंगे ।
- **ओ३म्** परमपिता परमात्मा का निज नाम है । परमात्मा इस सृष्टि का नियन्ता है । सृष्टि से सम्बन्धित सभी विषयों का इसमें समावेश किया जाएगा ।
- **ओ३म्–सुप्रभा** का प्रकाशन पूर्णतया निजी स्तर पर किया जा रहा है । उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रति मास देश–विदेश के आर्य विद्वानों, लेखकों, उपदेशकों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशकों एवं संस्थाओं को ओ३म्–सुप्रभा **निःशुल्क** भेजी जा रही है।
- लघु–पत्रिका के कारण, प्रकाशनार्थ लेख न भेजें ।
- सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने सुझाव भेजकर कृतार्थ करते रहें ।

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

रचना, स्थिति और प्रलय, कर्मों का फल जिस का विधान है ।
ओ३म् सुप्रभा ज्ञान अनुपम, सुरभित जिस से जन कुसुम प्राण है ।।

वर्ष–6, अंक–8	अप्रैल 2013	चैत्र
सृष्टि संवत् 1960853114	विक्रमी संवत् 2070	दयानन्दाब्द 190

ओ३म्-महिमा

यजुर्वेद एव पुष्पं, ता अमृता आपः।

–महात्मा नारायण स्वामी

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतः । यजुर्वेद एव पुष्पं । ता अमृता आपः ॥

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्त यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत् । तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳरूपम् ॥ छान्दोग्य उपनिषद् 3.2.1–3

अर्थ–(अथ, अस्य, ये, दक्षिणाः रश्मयः ता, एव, अस्य, दक्षिणा, मधुनाड्यः) और इस (सूर्य) की जो दक्षिण दिशा में जाने वाली किरणें हैं वे ही इसकी दक्षिण की ओर वाली मधु की नाड़ियां हैं । (यजूंषि, एव, मधुकृतः) यजु ही शहद की मक्खियां हैं । (यजुर्वेद, एव, पुष्पं, ताः, अमृताः, आपः) यजुर्वेद ही फूल है और वह अमृत रस पूर्ण है ॥

(तानि, वा, एतानि, यजूंषि, एतम्, यजुर्वेदम्, अभ्यतपन्) निश्चय उन इन यजु ने इस यजुर्वेद (रूप पुष्प) को तपाया (तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियं, वीर्यम्, अन्नाद्यं, रसः अजायत) उसके तपने से यश, तेज, इन्द्रिय बल और भोज्य अन्न रूप रस प्रकट हुआ ॥

(तद्, व्यक्षरत्, तद्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्) वह (यश आदि रस) झरने लगा और उसने आदित्य का सब ओर से आश्रय लिया (वे तत्, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लं, रूपम्) निश्चय वह यह है जो आदित्य का शुक्ल रूप है ॥ ●

भूलो न "ओ३म्" नाम रे

कभी भूलो न "ओ३म्" नाम रे ।
शुभ ही शुभ करो तुम काम रे ॥

प्रातः को समझो बाल्य-सम तुम बस दो प्रहर की है जवानी ।
तृतीय प्रहर है वृद्धावस्था प्रतीक शाम-समाप्त कहानी ॥
आता मरण लेकर शाम रे । कभी भूलो-----

हरित डाल पर लगी कली वह खिलने भी अभी न पाई थी ।
खिलते-खिलते ही टूट गई इक ऐसी आंधी आई थी ॥
मिला था उजड़ा वह धाम रे । कभी भूलो-----

क्या एक दिन पूर्व ही सिंहासन थे नहीं सजा रहे नर-नारी ?
दिन निकलते ही हो गई थी जाने की वन को तैयारी ॥
वन चले लखन-सिया-राम रे । कभी भूलो-----

आर्य राम का अनुराग नित्य 'ओ३म्' में था करते हुए कृत्य ।
किया नियमपूर्वक सन्ध्या-हवन जब घूम रहे थे वे वन-वन ॥
पढ़ो रामायण में राम रे । कभी भूलो-----

सुन्दरकाण्ड में ये पढ़ो शब्द सीता के विषय में दिए शब्द ।
"जानकी सा सन्ध्याकालमना देवी ताराधिपनिभानना ॥"
अमर सीता ओ३म्मय राम रे । कभी भूलो-----

सुन्दरकाण्ड है, अस्तु, प्रमाण सन्ध्योपासन था सीता-प्राण ।
'ओ३म्' ही रहा उसका संबल 'ओ३म्' का ही रहा साथ में बल ॥
तप किये सभी निष्काम रे । कभी भूलो-----

थे नहीं लक्ष्मण भी पीछे भक्ति में, साथ राम के दीखे ।
सन्ध्योपासन किया नियम से अनुचर राम के रहे धर्म से ॥
हुआ लक्ष्मण भी अमर नाम रे । कभी भूलो-----

—प्रियवीर हेमाइना
मो० 7503070674

सम्पादकीय

ओ३म् सुप्रभा का अप्रैल 2013 का अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए, हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है । इस अंक में हमने यथापूर्व **'स्मरण–अनुकरण–नमन'** तथा **'आर्यसमाज चिन्तन–अनुचिन्तन'** के अन्तर्गत विद्वानों के प्रासंगिक लेख दिए हैं । हमने **'जन्मशती स्मरण'** के अन्तर्गत श्री इन्द्रस्वामी 'इन्द्रकवि' का परिचय दिया है तथा **'इतिहास के वातायन से'** के अन्तर्गत 'दानापुर में आर्यसमाज की स्थापना' का विवरण दिया है । और 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचार-धारा' के अन्तर्गत हमने 'वेदों की शिक्षा' विषयक विचारों को प्रस्तुत किया है । अप्रैल मास में नवसंवत्सर, आर्यसमाज स्थापना दिवस, रामनवमी, पं० रामचन्द्र देहलवी जन्म दिवस, महात्मा हंसराज जन्म दिवस, वैशाखी, जलियांवाला बाग तथा महाशय राजपाल के बलिदान के सम्बन्ध में पाठ्य सामग्री दी है ।

नव सम्वत्सर

भारत विभिन्नताओं का देश है । यहां पर नववर्ष भी विभिन्न महीनों में विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है । यहां की जाति, भाषा, वेशभूषा सम्बन्धी विशेषतायें बड़ी स्पष्ट हैं । इसी प्रकार नववर्ष के आयोजन सम्बन्धी परम्परायें भी विभिन्न हैं ।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन, मान्यता है कि परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया था । चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन परमात्मा ने जगत् की रचना की । ब्रह्म दिन, सृष्टि संवत, वैवस्वत मन्वन्तर, सतयुग आदि के आरम्भ और विक्रमी संवत् ये सभी चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होते हैं । भारत में इस पर्व को मनाने के प्रमाण प्राचीन काल से मिलते हैं ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी दिन आर्यसमाज की स्थापना की थी । आर्य लोग इसे प्रसन्नता और उल्लास से मनाते हैं । पर्वों के आयोजन सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता और राष्ट्रीय एकता का सन्देश देने वाले होते हैं । आओ हम भी इस दिन प्राणी मात्र के कल्याण की कामना करते हुए जीवन में दूसरों के सुख-दुःख के साथी बनें । और राष्ट्र की रक्षा, एकता और अखण्डता का व्रत लें ।

आर्यसमाज स्थापना दिवस

उन्नीसवीं सदी का परार्ध भारत के इतिहास में नव जागरण काल के नाम से जाना जाता है । उस समय का पराधीन भारत, स्वाधीन होने के लिए आतुर दीख पड़ने लगा था । यह आतुरता निश्चय ही, अनेक युगपुरुषों के समवेत आहवान के फलस्वरूप जन्मी थी । उस युग के इतिहास पुरुषों में

राजा राम मोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, महात्मा रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के नाम लिए जा सकते हैं । इस महापुरुषों ने सामाजिक चेतना को उद्‌बुद्ध करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था । सर्वप्रथम स्वराज्य शब्द का उद्‌घोष महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था । महर्षि दयानन्द सरस्वती से बढ़कर हमारा उपकार किसी भी अन्य महापुरुष ने नहीं किया । उन्होंने स्वयं अपने लिए कुछ नहीं किया और वेदों की अपार ज्ञान राशि का बन्द द्वार हमारे लिए खोल दिया । स्वामी जी की यह प्रबल धारणा रही है कि विभिन्न मतों-सम्प्रदायों में बटने के कारण ही भारत की यह दुर्व्यवस्था हुई थी ।

ऋषिवर ने 10 अप्रैल 1875 को आर्यसमाज की स्थापना करके, मानवमात्र के उपकारार्थ जो किया वह सदा-सदा याद किया जायेगा । वे देशवासियों को विशुद्ध वैदिक धर्म में दीक्षित कर, आत्मज्ञान ही सा उज्जवल और पवित्र कर देना चाहते थे । उन्होंने वेद के उदाहरण देकर सिद्ध कर किया कि स्त्रियों की शिक्षा, अध्ययन आदि वेद विहित है उन्होंने दलितों को समान अधिकार दिलाया, भटके हुओं को सही रास्ता दिखाया, ब्रह्मचर्य पालन की महिमा का वर्णन किया । उन्होंने भारतीय प्राचीन संस्कृति को नव जीवन प्रदान किया ।

स्वामी जी महाराज भारत को राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक रूप से एक सूत्र में बांधना चाहते थे । आज आर्यसमाज का स्थापना दिवस सम्पूर्ण विश्व में मनाया जा रहा है । उस युगदृष्टा ऋषि को हमारी प्रणामांजलि ।

वैशाखी

वैशाखी पर्व का भारतवर्ष के इतिहास में विशेष महत्व है । यह राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का प्रतीक पर्व है । यह सामाजिक एवं धार्मिक समरसता को आत्मसात किए हुए है । यह पर्व चैत्र के उत्तरार्ध में एवं वैशाख के पूर्वार्ध में उस दिन मनाया जाता है,

इस दिन का भारत वर्ष के स्वाधीनता संग्राम में भी विशेष महत्व है । 1919 में वैशाखी के दिन ही जलियांवाला बाग में जनरल डायर के आदेश पर सैंकड़ों, हजारों निरपराध भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया गया । वे सरकार के विरोध में एक जनसभा कर रहे थे । इसका प्रभाव भारतीय जनमानस में एक नई ऊर्जा प्रदान करने वाला हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतीयों का उत्साह और अधिक बढ़ गया । जलियांवाला काण्ड के पश्चात् अमृतसर में जब कांग्रेस का महा अधिवेशन होना था, उसके स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती बनाये गये । स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती ने अपने भाषण के द्वारा भारतीय लोगों से ओजस्वी वाणी में कहा था कि यदि अब सोते रहे तो भारत कभी स्वाधीन नहीं हो पाएगा और अंग्रेजों के अत्याचार

इसी प्रकार हम लोगों पर होते रहेंगे ।

यह दिन राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का दिन है । हमारा कर्तव्य है कि राष्ट्रीय एकता के समर्थन हेतु इस दिन को धूमधाम से मनायें ।

रामनवमी

भारतीय संस्कृति के दो पुरोधा है—भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण। भगवान् राम के जीवन पर प्रारम्भ से अन्त तक दृष्टिपात करके देखें तो यह पता लगेगा कि वह महानुभाव कहीं पर भी अपने स्वार्थ के लिए नहीं सोचता, वह सर्वत्र लोकहित की ही बात करता है ।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । राम से बड़ा राम का नाम । यह लोकोक्ति न जाने समय के कितने लम्बे अन्तराल को लांघ कर बनी है । यह हमारे लिए प्रेरक है कि हम भले ही राम की पूजा आराधना न करें, पर रामत्व को अवश्य धारण करें । यही तो आदर्श चरित्र की महत्ता है । राम ने सामान्य धर्म का पालन किया था । सीता की रक्षा में उन्होंने यही किया और आगे चलकर सीता का त्याग में भी । राम धैर्य में हिमवान है । धैर्य की उपमा धरित्री से दी जाती है, परन्तु वाल्मीकि ने धरित्री को भी हिमवान की श्रेणी तक ऊंचा उठाया है । राम का धैर्य पसीजता है, द्रवित होता है, पर हिमालय की भांति टूटता नहीं है ।

रामत्व क्षमा में है । आओ हम इस गुण को धारण करें । राम एक व्रत-धारी है । राम एक बोलते हैं, एक बाण उठाते हैं, एक निर्णय लेते हैं । वह एक हैं । एक की संख्या अपने में पूर्ण होती है ।

रामत्व उसके शील में व्यक्त होता है । राम के शील का अनुमान पिता से, माता से, भाई से, सुग्रीव से, रावण से बात-चीत के बीच लगाया जा सकता है । राम हनुमान के संवाद कितने मार्मिक हैं । राम की भाषा, राम का भाव, राम राग, सब कुछ शीलमय है । वह कठोर से कठोर हृदय को भी द्रवित कर सकते हैं ।

राम की यही लोकरंजनकारी रामत्व स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है ।

पं० रामचन्द्र देहलवी

पं० रामचन्द्र देहलवी का जन्म मध्य प्रदेश के नीमच शहर में 1881 ई0 की रामनवमी के दिन हुआ था । इसीलिए उनका नाम रामचन्द्र रखा गया । जीविका निर्वाह के लिए रामचन्द्र दिल्ली आए । यहां पर पहले नौकरी की और फिर अपने श्वसुर की दुकान पर कार्य करने लगे । रामचन्द्र देहलवी की पत्नी का निधन उस समय हो गया था जब वे केवल 36 वर्ष के थे । यद्यपि अनेक प्रस्ताव पुनर्विवाह के आए परन्तु वैदिक धर्म का प्रभाव उन्हें अकेले ही जीवन यात्रा के पथ पर साहस पूर्वक चलने की प्रेरणा देता रहा ।

वैदिक धर्म के उत्कर्ष प्रवक्ता, तार्किक, उच्चकोटि के शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी की ख्याति दिग्दिगन्त फैल गई। हैदराबाद में उनके व्याख्यानों ने अभूतपूर्व जागृति फैलाई। और निजाम सरकार ने तो उन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। अत्यधिक वृद्ध होने पर भी उन्होंने धर्म प्रचार के कार्य से मोह नहीं मोड़ा। 2 फरवरी, 1968 को दिल्ली में उनका निधन हुआ। पं० रामचन्द्र देहलवी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जो वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में अपनी विशिष्ट भूमिका को रेखांकित करते हैं।

महात्मा हंसराज

तपोनिष्ठ महात्मा हंसराज का जन्म 19 अप्रैल 1864 को होशियारपुर के वैजवाड़ा नामक स्थान में हुआ था। छात्र जीवन में ही हंसराज ने स्कूल से घर तक प्रतिदिन नंगे पांव पैदल चलकर तप, त्याग व परिश्रम का अभ्यास कर लिया था। महात्मा हंसराज ने अपने बड़े भाई श्री मुलक राज द्वारा केवल चालिस रुपये प्रतिमास की सहायता स्वीकार कर स्वयं माता, पत्नी, दो पुत्र व पुत्रियों के आठ सदस्यों के परिवार का सारी आयु आर्थिक विपन्नताओं में पालन-पोषण कर सादगी व सरलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। हंसराज जी ने डी० ए० वी० महाविद्यालय में 25 वर्षों तक अवैतनिक कार्य कर निःस्वार्थ सेवा की अद्वितीय मिसाल कायम की। वर्षों तक महाविद्यालय के प्रधान रहे और तत्पश्चात् आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान पद को सुशोभित किया।

आज भारत ही नहीं विदेशों में भी महात्मा हंसराज द्वारा स्थापित डी० ए० वी० शिक्षण संस्थाओं का जाल बिछा है, जिन्होंने शहीदे आजम सरदार भगतसिंह सरीखी महान् विभूतियां पैदा कीं, जिन्होंने समाज, धर्म व जाति की अमूल्य सेवा की है। ऐसे महान् शिक्षा शास्त्री, त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज को आज भी समस्त आर्यजगत् में 'हंस-हंस के हंसराज ने तन, मन व धन लुटा दिया"—प्रेरक भजन के द्वारा बड़ी श्रद्धा पूर्वक याद किया जाता है।

महाशय राजपाल जी

महाशय राजपाल का जन्म अमृतसर में 5 आषाढ़ 1942 वि० को हुआ। आपने आर्यसमाज के साहित्य प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 6 अप्रैल 1929 में आपका बलिदान हुआ। आपने 'भक्तिदर्पण' नाम से एक सुन्दर ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

आपके बलिदान दिवस पर हम आपको सश्रद्ध स्मरण करते हैं।

हमें समय समय पर सुधी पाठकों के पत्र प्राप्त होते हैं। आपके पत्र हमारा सम्बल हैं।

—सम्पादक

दानापुर आर्यसमाज की स्थापना

आर्यसमाज के आन्दोलन के विकास में भी बिहार की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। पूर्वी भारत में पहले आर्यसमाज की स्थापना पटना के निकट दानापुर में ही हुई थी। जिस प्रकार पश्चिमी भारत में सर्वप्रथम बम्बई में और उत्तरी भारत में लाहौर में आर्यसमाजों की स्थापना हुई, उसी प्रकार दानापुर के समाज को पूर्वी भारत का सर्वप्रथम आर्यसमाज होने का गौरव प्राप्त है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्देश से 4 मार्च, 1878 ई० को दानापुर में स्थापित होनेवाले आर्यसमाज का इतिहास बड़ा रोचक है। दानापुर पटना के पश्चिम में 12 कि० मी० दूर गंगा के दायें तट पर अंग्रेजों की एक छावनी और पटना जिले का सैनिक मुख्यालय था।

1857 में पटना में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सैनिक विद्रोह यहीं से आरम्भ हुआ। सेना को रसद तथा अन्य सामग्री की पूर्ति करनेवाले अनेक भारतीय व्यापारी और ठेकेदार दानापुर में बसे हुए थे, जो शिक्षित और सम्पन्न थे। इनमें से कुछ व्यक्तियों में हिन्दु समाज की बुराइयों को दूर करने की भावना उत्पन्न हो गई थी और महर्षि के दानापुर आगमन से पहले ही वे मूर्तिपूजा के विरोधी बन चुके थे। और केवल विचार, मनन और चिन्तन पर बल देते थे। इसलिये अपने को 'विचारपंथी' कहा करते थे।

इसके दो-एक वर्ष बाद इन व्यक्तियों ने पंजाब के सुधारवादी विचारक मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों का अनुशीलन किया और तब विचार-सभा को हिन्दू सत्यसभा का नया नाम दिया गया। सात-आठ वर्ष तक यही स्थिति चलती रही। किन्तु इसके बाद एक विचित्र संयोग से इसके सदस्यों का परिचय पहले महर्षि दयानन्द सरस्वती की अमरकृति सत्यार्थप्रकाश से हुआ तथा बाद में स्वयं महर्षि दयानन्द सरस्वती से।

सन् 1875 में सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण जब बनारस में छप रहा था, उस समय प्रेस में प्रूफ देखने का काम छेदीलाल नामक एक व्यक्ति कर रहा था। यह पहले दानापुर में रह चुका था और मास्टर जनकधारीलाल से परिचित था। एक बार कार्यवश श्री जनकधारीलाल दानापुर से वाराणसी आये और छेदीलाल के घर पर ठहरे। यहां उसके घर पर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के पुराने रद्दी प्रूफ देखे; उन्हें पढ़कर, विशेषतः 11वें समुल्लास का अनुशीलन करके वह लेखक से बहुत प्रभावित हुए। छेदीलाल ने जब महर्षि की बहुत प्रशंसा की और कहा कि वे बहुत बड़े मनुष्य हैं तो मास्टर जी ने पूछा कि उनके बड़प्पन का क्या कारण है? छेदीलाल ने बताया कि "वे सत्य कहने के कारण बड़े व्यक्ति हैं। कितना भय, कष्ट या दुःख क्यों न हो, वे बड़ी निर्भीकता से सच्ची बात कहते हैं। यह काम महात्मा का है। हर व्यक्ति से

(शेष पृष्ठ 12 पर)

दयानन्द-सागर (महाकाव्य)

वैराग्य काण्ड

[श्री भगवान्दासजी आर्यसमाज नांगल राय के वरिष्ठ सदस्य हैं । आप में काव्यसृजन की नैसर्गिक प्रतिभा है । आप पालिका समाचार के पूर्व सम्पादक हैं आपके महाकाव्य से ये अंश उधृत है ।]

थी घोर निशा पथ भी बीहड़, थे वृक्ष कंटीले पग-पग पर ।
हिंसक पशु-बटमारों का डर, कहीं सर्प-बिच्छू सरकें भू-पर ॥
ना आग-प्रकाश संग में हो, नहीं अस्त्र-शस्त्र होवें कर में,
नहिं ओर-छोर पथ का दीखे, तम का अंधियारा हो दृग पर ॥

ऐसी ही दशा थी भारत की, जब दयानन्द जन्मे भू-पर ।
था अन्धकार-अज्ञान, वेद को भुला चुका था भारत-भर ॥
जिह्वा पर नाम धर्म का था, थे कर्मकाण्ड उनके थोथे,
नैतिकता नाममात्र की थी, मिथ्या विश्वास चढ़े उन पर ॥

अतिमूढ़ रूढ़ियां विकसित थी, संकीर्ण विचार शिखर पर थे ।
था सकल समाज बुराईरत, जगमें पसरे आडम्बर थे ॥
बाल और बहु-विवाह प्रथा, चहुंदिशि विधवाओं के दुखड़े,
नारी को बना गुलाम उन्हें, पर्दे में रखने के स्वर थे ॥

जन्मना जाति आधार बना, बहु-भागों में करके विघटन ।
छुआ-छूत, अतिनीच-ऊंच, अगणित वर्गों का किया गठन ॥
उन्हें परस्पर बांट अनेकों अत्याचार किये उन पर,
विखण्डनों से विदेशियों से, शासित फिर हो गया वतन ॥

लघु टुकड़ों में कुल देश बंटा, संकुचित राष्ट्र भावना प्रखर ।
कम्पनी ईस्ट इण्डिया देश में आई व्यापारी बनकर ॥
सेनायें गठित करी निज की, अंग्रेज राज की नींव पड़ी ,
धीरे-धीरे कब्जा करके, अंग्रेज छा गये भारत पर ॥

तज स्वाभिमान-सम्मान भाव, हम पूरी तरह गुलाम हुए ।
निज संस्कृति-भाषा-वेश तजे, ईसा के भक्त तमाम हुए ॥
थे रंग-रूप में भारतीय, अन्दर पश्चिमी विचार पले,
मैकाले शिक्षा-पद्धति में, पारंगत कस्बे ग्राम हुए ॥

भारती सभ्यता-वेद धर्म का सूर्य आ रहा अस्ताचल ।
ढोंग और पाखण्ड कुमत के, झंझावत चले पल-पल ॥
विधर्मियों के कुचक्र में फंसते जाते भारतवासी,
ईसाइयत अरु इस्लाम-पंथ-साम्राज्य बढ रहा था अविकल ॥

छाई थी सारे भारत में, पग-पग बेकारी-लाचारी ।
बहुदेव-वाद की आंधी में, जड़पूजा प्रभु पर थी भारी ॥
वेदेश्वर, धर्म, संस्कृति अरु, सभ्यता देश से निर्वासित,
मृतक-श्राद्ध-जन्मना-जाति, ज्योतिष-विश्वासित नरनारी ॥

था कर्म गौण अरु भाग्य प्रमुख, भारत के जनमन ने माना ।
अकर्मण्यता-आंधी ने, सब नष्ट कया ताना-बाना ॥
दुर्व्यसन-नशे-पशुबली-मांस, मदपान-भांग का बढ़ा चलन,
क्रिश्चन-मुस्लिम बढ़ रहे सतत् हिन्दू-सन्तुलन हुआ काना ॥

नारी-विधवा दुर्दशा बढ़ी, शिक्षा अधिकार हुआ कमतर ।
गौ-हत्या और गुलामों से, भारत हो गया शून्य घटकर ॥
संस्कृत-हिन्दी पढ़ना छूटा, अंग्रेजी का विस्तार हुआ,
निज गौरव और स्वशासन का, हो गया स्पप्न सब छू-मन्तर ॥

मर्चेन्ट-मिलिटरी-मैकाले, मिश्नरी, मैक्समूलर आये ।
भारती-सभ्यता हीन बता, ईसाइयत-परचम फहराये ॥
पोंगा-पण्डित निज स्वार्थ फंसे, ढोंगों में रत थे, तर्क हीन,
अज्ञान-तिमिर कर नष्ट, सूर्य वन, दयानन्द भू-पर आये ॥

(क्रमशः)

—भगवानदास 9213494923

आर्य साहित्यसेवी विश्वकोश

दस खण्डों में प्रस्तावित 'आर्यसाहित्य सेवी विश्वकोश' का लेखन कार्य प्रगति पर है । सुविज्ञ पाठकों से विनम्र निवेदन है कि यदि उन्होंने अपना परिचय, चित्र तथा लेखन-कार्य का विवरण अभी तक नहीं भेजा है, तो कृपया अपना परिचय शीघ्र भेजें जिसमें नाम, चित्र, माता-पिता का नाम, पति/पत्नी का नाम, जन्मस्थान और जन्म तिथि (निधन स्थान और निधन तिथि केवल दिवंगत के लिए), जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग, लेखन कार्य का विस्तृत परिचय आदि कृपया शीघ्र भेजें । *—सम्पादक*

(पृष्ठ 9 का शेष)
ऐसा कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि लोग जानते हुए भी अनेक कारणों से पूरा सत्य नहीं कहते हैं । महर्षि में केवल विद्या ही नहीं है अपितु उनकी विचारशक्ति और सत्य कहने में दृढ़ता भी वैसी ही है ।"

मास्टर जनकधारीलाल बनारस से घर लौटते हुए सत्यार्थप्रकाश के रद्दी प्रूफों को अपने साथ ले गये । दानापुर में उन्होंने जब हिन्दू सत्यसभा के अधिवेशन में अपनी मित्र-मण्डली को ये प्रूफ सुनाये, तो सभी व्यक्ति इस सत्य से प्रभावित हुए, और उनमें इसे प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई । शीघ्र ही यह अभिलाषा पूर्ण हुई । जब बाबू माधोलाल और जनकधारीलाल सोनपुर गये, तो वहां उन्हें सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति मिली । इसे एक सदस्य ने खरीद लिया। सभा में इसे आदि से अन्त तक पढ़कर सुनाया गया। सब सदस्य इससे बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए, और इससे मूर्तिपूजा के विरोध में तथा समाज-सुधार के बारे में उनके अपने विचार और विश्वास दृढ़ हो गये ।

इसके बाद दानापुर के मित्रमण्डली की यह जिज्ञासा हुई कि महर्षि ने अन्य कौन-कौन से ग्रन्थ लिखे हैं, और वे कहां से मिल सकते हैं । उन्होंने सभा की ओर से एक पत्र छेदीलाल को लिखकर पूछा कि क्या महर्षि की कोई और पुस्तक छपी है ? इस पर छेदीलाल ने उत्तर दिया-"सुना है कि लाजरस के यहां उनकी बनायी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका छप रही है ।" यह सूचना पाकर सभा ने 6 जनवरी, 1878 को भूमिका की तीन प्रतियां इस प्रेस से मंगवाई । इन पर महर्षि का पता छपा हुआ था । इसके आधार पर इन लोगों ने उनसे पत्र-व्यवहार किया ।

बिहार में महर्षि के साथ बाबू माधोलाल आदि के परिचय और सम्पर्क के सम्बन्ध में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि-बाबू माधोलाल आदि को जब एप्रिल, 1875 में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना होने का समाचार मिला, तो जनकधारीलाल, माधोलाल, बाबू ठाकुरप्रसाद बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ स्वामीजी के दर्शन के लिए बम्बई पहुंचे । महर्षि के साथ इनका पत्र व्यवहार निरन्तर चलता रहा ।

महर्षि भारत में सर्वत्र आर्यसमाजों की स्थापना करना चाहते थे, अतः उन्होंने बाबू माधोलाल को एक पत्र में यह लिखा कि दानापुर की हिन्दू सत्यसभा का नाम आर्यसमाज रखना चाहिए और ऐसा करने के कारणों को भली-भांति स्पष्ट किया ।

दानापुर वासियों ने स्वामीजी का परामर्श स्वीकार कर लिया और हिन्दू सत्यसभा के स्थान पर अपनी सभा का नाम 'आर्यसमाज' कर दिया । दानापुर आर्यसमाज की विधिवत स्थापना 28 मार्च 1878 को हुई । इस समाज के पहले प्रधान बाबू जनकधारीलाल चुने गये तथा मन्त्री बाबू माधोलाल निर्वाचित हुए थे । [आर्यसमाज का इतिहास (भाग-2) -सम्पादक डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार से कुछ अंश] ●

वेदों की शिक्षा

महाभाष्य में लिखा है कि ब्राह्मण को छः अंगो समेत वेदों की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यश्चेति ।

इन छः अंगो में व्याकरण मुख्य है और पाणिनि बड़े विद्वान् व्याकरण हो गए हैं । इनकी जितनी प्रशंसा की जावे उतनी ही कम है । इस महामुनि ने पांच पुस्तकें बनाई हैं–1. शिक्षा, 2. उणादिगण, 3. धातुपाठ, 4. प्रातिपदिक-गण, 5. अष्टाध्यायी । यह बात निश्चय करने के लिए पाणिनि कब हुए, अनेक प्रकार की तर्कणायें प्रस्तुत की जाती है; परन्तु इस विवाद से कुछ लाभ नहीं हो सकता । यह बात तो ठीक है कि पाणिनि बहुत पुराने ग्रन्थकर्ता हैं ।

प्राचीन समय में चौदह विद्याओं के पढ़ने की रीति हमारे देश में थी । चार वेदों के नाम तो सभी जानते हैं और चार उपवेद और छः अंग मिलकर चौदह होते हैं । चार उपवेद और छः अंग कौन होते हैं उनका विचार करेंगे।

चार उपवेद जो हैं उनमें से पहला आयुर्वेद है । इस पर जो ग्रन्थ चरक और सुश्रुत मिलते हैं उनके बनाने वाले [अग्निवेश और] धन्वन्तरी ऋषि हैं।

दूसरे धनुर्वेद हैं जिसमें अस्त्र-शस्त्र विद्या का विचार है । इस उपवेद में ब्रह्मास्त्र, पाशुपत-अस्त्र, नारायण अस्त्र, वरुण अस्त्र, मोहन अस्त्र, वायव्यास्त्र आदि की व्यवस्था लिखी है । ये सब अस्त्र वेदार्थ का विचार कर और वस्तुओं के गुण और दोष जानकर तैयार किये जाते थे । क्षत्रिय लोगों को यह धनुर्वेद बड़े परिश्रम से पढ़ना पड़ता था । यह कहना दिवानापन है कि केवल मन्त्रों के उच्चारण से शस्त्र और अस्त्र तैयार हो जाते थे ।

तीसरा गन्धर्ववेद है, जिसमें विद्वानों ने गान-विद्या का वर्णन किया है। उस समय नये वेश की कविता अर्थात् पद, ध्रुवपद, ख्याल, लावणी आदि नहीं गाते थे । प्राचीन आर्य लोग वेदमन्त्रें का रसीला गायन करते थे ।

चौथा अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र है । इसका विचार मयसंहित, वाराहसंहिता, विश्वकर्मसंहिता आदि पुस्तकों में बहुत तरह पर किया है ।

एक अपूर्व बात इस समय स्मरण हुई है, वह आपको सुनाता हूं–एक अंग्रेजी विद्वान् डाक्टर हमको मिला । उसने मुझसे कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डाक्टरी औजार का कुछ भी प्रचार न था और उन्हें विदित न था । तब मैंने सुश्रुत का 'नेत्र-अध्ययन' जिसमें कि बारीक-से बारीक औजार का वर्णन है, निकाल कर उसे दिखाया । तब उसको ज्ञात हुआ कि आर्य लोग

(शेष पृष्ठ 14 पर)

मंगलमय हो नव संवत्सर

वेद भानु की प्रखर रश्मियां । मुखरित हों नव स्यात ।
वेदों की महिमा से मंडित आए नया प्रभात ।
घनीभूत हो गहन तमिस्त्रा क्षत-विक्षत हो वसुधा की ।
अभिषिक्तित हो पूर्ण धरा यह बरसे धार सुधा की ।
मिटे धरित्री के प्रांगण पर, छाया है जो घना कुहासा ।
नव आलोक मिले जन-जन को, खिले मनुजता की नव आशा ।
कटुता कल्मषता का भू से, हटे पुनः सम्पूर्ण अंधेरा ।
सत्य-शिवं सुन्दरता पूरित । आए भू पर नया सबेरा ।
मानवता की विजय पताका, फहरे लेकर मानव हित ।
सुख सम्पदा सफलता सरसे, हो दानववृत्ति पराजित ।
सत्य धर्म के पथिक बनें हम, आलोकित हो मार्ग हमारा ।
ज्योतिर्मय हो वसुधा सारी, ज्योतिर्मय हो राष्ट्र हमारा ।
शौर्यवान् हों, धैर्यवान् हों, वीर व्रती हों सारे लोग ।
खुशियां ही खुशियां हों भू पर, सारे मानव रहें निरोग ।
सदा लड़ें अन्याय अनय से आर्य बनें धरती के बासी ।
मंगलमय हो नया वर्ष यह, सुखी बनें सब भूमि वासी ॥

–स्व० राधेश्याम आर्य

(पृष्ठ 13 का शेष)

चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औजारों की विद्या भी उत्तम ज्ञात थी ।

छः वेदांग हैं–1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द, 6. ज्योतिष–ये सब मिलकर चौदह विद्यायें हुईं । इन सब पुस्तकों का अवलोकन करने में बारह वर्ष लगते हैं और इन ग्रन्थों का दृढ़ अभ्यास करने से बुद्धि में उत्तमता पैदा होती थी । इस समय कुछ ऐसा अनुचित शिक्षा-प्रबन्ध का प्रचार हुआ कि इनमें से एक भी विद्या अत्यन्त परिश्रम करने पर चौबीस वर्ष में भी नहीं आती है । इसका कारण यह है कि केवल तोता-पाठ का घोषा-घोष चलता है । इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली बन्द करनी चाहिए । प्राचीन ऋषियों ने विद्या-स्नातक होने को ब्रह्मचारी के लिए केवल बारह वर्षों की हद रखी है । उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने ये सब विद्यायें बारह वर्षों में सीखी थीं ऐसा लेख मिलता है और यदि प्राचिन रीति के अनुसार इस समय भी शिक्षा दी जावे तो बारह वर्ष से विशेष समय इस काम में नहीं लगेगा । ●

क्रान्ति का मूल स्त्रोत सत्यार्थप्रकाश

—पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

[सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् शिक्षाविद, चिन्तक, विचारक, लेखक एवं वक्ता पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार का जन्म ५ मार्च १८९८ को लुधियाना जिले के सवद्दी ग्राम में हुआ । आपकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई । आपने वहां उपाध्याय, मुख्याधिष्ठाता और कुलपति पदों पर रहकर अपनी मातृसंस्था की सेवा की । आपने दक्षिण भारत के अनेक स्थानों पर वैदिक धर्म का प्रचार किया । आप राज्य सभा के सदस्य भी मनोनीत हुए । आप अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन नैरोबी के अध्यक्ष बने । आपकी महत्वपूर्ण कृति 'वैदिक विचार धारा का वैज्ञानिक आधार' अनेक बार पुरस्कृत हुई । आपको भारत सरकार ने संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् के रूप में सम्मानित किया ।]

ऋषि दयानन्द जिस समय १८६० में गुरु विरजानन्द जी के पास विद्याध्ययन के लिए पहुंचे, उस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी। १८६३ में उन्होंने अपने गुरु से दीक्षा ली और उनके पास से अध्ययन समाप्त कर जीवन-क्षेत्र में उतर पड़े । इस समय वे ३९ से ४० वर्ष के हो चुके थे । विरजानन्द जी के पास उन्होंने जो कुछ सीखा वही उनकी वास्तविक शिक्षा थी, क्योंकि इससे पहले वे जो कुछ पढ़ आये थे उसे विरजानन्द जी ने भुला देने की उनसे प्रतिज्ञा ली थी । इस प्रकार ऋषि दयानन्द जी की यथार्थ शिक्षा १८६० से १८६३ तक अर्थात् कुल तीन वर्ष हुई थी । उन्होंने पीछे चलकर अपने जीवनकाल में जितने व्याख्यान दिये, जितने ग्रन्थ लिखे, जितने शास्त्रार्थ किये, वह इन तीन वर्षों के अध्ययन का ही परिणाम था । इसी से स्पष्ट होता है कि इन तीन सालों में उन्होंने जो पाया था वह कितना मूल्यवान था ।

अपने गुरु विरजानन्द जी से ऋषि दयानन्द ने जो गुर पाया था वह आर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों में भेद करना था । ३६ वर्ष की आयु से पहले उन्होंने जो कुछ पढ़ा था वह अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन था । आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन ने उनके जीवन उनके विचारों में जो क्रान्ति उत्पन्न कर दी उससे भारत के पिछले वर्षों का इतिहास बन गया ।

इस क्रान्ति का मूल स्त्रोत सत्यार्थप्रकाश है । सत्यार्थप्रकाश १८७४ में लिखा गया । मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास जी काशी में डिप्टी कलेक्टर थे, तब ऋषि दयानन्द काशी पधारे । राजा जयकृष्णदास ने ऋषि से कहा-आपके उपदेशामृत से वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं जो आपके व्याख्यान सुनते हैं । जिन्हें आपके व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं मिलता उनके लिए अगर आप विचारों को ग्रन्थ रूप में लिख दें, तो जनता का बड़ा

उपकार हो । ग्रन्थ के छपने का भार राजा जयकृष्णदास ने अपने ऊपर ले लिया । यह आश्चर्य की बात है कि यह बृहत्काय तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ, जिसे पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने १८ बार पढ़कर कहा कि हर बार के अध्ययन से उन्हें नया रत्न हाथ आता है, कुल साढ़े तीन महीनों में लिखा गया ।

केवल तीन मास में

सत्यार्थप्रकाश का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसमें ३७७ ग्रन्थों का सन्दर्भ है । इस ग्रन्थ में १५४२ वेदमन्त्रों या श्लोकों के उद्धरण दिये गये हैं । चारों वेद, सब ब्राह्मण ग्रन्थ, सब उपनिषद छहों दर्शन, अठारह स्मृति, सब पुराण, सूत्र ग्रन्थ, जैन बौद्ध ग्रन्थ, बाइबिल, कुरान-इन सबके उद्धरण ही नहीं, उनके सन्दर्भ भी दिये गये हैं । किस ग्रन्थ में, कौन सा मन्त्र या श्लोक, या वाक्य कहां है, उसकी संख्या क्या है यह सब कुछ इस साढ़े तीन महीनों में लिखे ग्रन्थ में मिलता है । आज का कोई शोधकर्त्ता यदि किसी विश्वविद्यालय की संस्कृत की अद्यतन लायब्रेरी में जहां सब ग्रन्थ, उपलब्ध हों, इतने सन्दर्भों वाला कोई ग्रन्थ लिखना चाहे तो भी उसे सालों लग जायें, जिसे ऋषि दयानन्द ने साढ़े तीन महीनों में तैयार कर दिया था । साधारण ग्रन्थ की बात दूसरी है, सत्यार्थप्रकाश एक मौलिक विचारों का ग्रन्थ है । ऐसा ग्रन्थ जिसने समाज को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिला दिया । जिन ग्रन्थों ने संसार को झकझोरा है उनके निर्माण में सालों लगे हैं । कार्ल मार्क्स ने ३४ वर्ष इंग्लैंड में बैठकर 'कैपिटल'-ग्रन्थ लिखा था जिसने विश्व में नवीन आर्थिक दृष्टिकोण को जन्म दिया । किन्तु ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' साढ़े तीन महीनों में लिखा था जिसने नवीन सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म दिया । मार्क्स के ग्रन्थ ने यूरोप का आर्थिक ढांचा हिला दिया, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ ने भारत का सांस्कृतिक तथा सामाजिक ढांचा हिला दिया ।

क्रान्तिकारी विचारों का खजाना

सत्यार्थप्रकाश चुने हुए क्रान्तिकारी विचारों का ख़ज़ाना है–ऐसे विचारों का जिन्हें उस युग में कोई सोच भी नहीं सकता था । समाज की रचना 'जन्म' के आधार पर न होनी चाहिए– सत्यार्थप्रकाश का यही एक विचार इतना क्रान्तिकारी है कि इसके व्यवहार में आने से हमारी ९० प्रतिशत समस्याएं हल हो जाती हैं । ऐसे संगठन में जन्म से न कोई ऊंचा, न कोई नीचा, जन्म से न कोई गरीब, न कोई अमीर, जो कुछ हो कर्म से हो-ऐसी स्थिति कौन सी समस्या है जो इस सूत्र से हल नहीं हो जाती ।

शिक्षा क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का विचार सत्यार्थप्रकाश की ही देन है । जिसे पकड़ कर उत्तर भारत में जगह-जगह गुरुकुलों का जाल बिछ

गया । आज भी हमारी शिक्षा-प्रणाली की जो छीछालेदर हो रही है उसका इलाज गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ही निहित है ।

लोकमान्य तिलक ने कहा था– 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।'

दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया था । इसे सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में लिखा था– 'कोई कितना ही कहे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है ।' ऋषि दयानन्द के वाक्य उस जगत्-प्रसिद्ध अंग्रेजी वाक्य से जिसमें कहा गया था–"Good government is no substitute for self-government"– इतने मिलते जुलते हैं कि १८७४ में अंग्रेजों के राज्य में कोई व्यक्ति यह लिखने का साहस नहीं कर सकता था-यह जानकर आश्चर्य होता है ।

आज जिन समस्याओं को लेकर हम उलझे हैं हरिजनों की समस्या, स्त्रियों की समस्या, गरीबी की समस्या, शिक्षा की समस्या, देशभाषा की समस्या, चुनाव की समस्या, नियम तथा व्यवस्था की समस्या, गोरक्षा की समस्या-कौन सी समस्या है जिसका हल सत्यार्थप्रकाश में मौजूद नहीं है और कौन सा ऐसा हल आज के राजनीतिज्ञों ने ढूंढ निकाला है जो सत्यार्थप्रकाश में पहले से नहीं है ।

वैदिक वाङ्मय के सम्बन्ध ऋषि दयानन्द की खोज यह थी कि हर संस्कृत में वाक्य तथा हर संस्कृत ग्रन्थ वेद नहीं है । ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, स्मृति, पुराण, सूत्र-ग्रन्थ-ये सब वेद नहीं हैं । इन ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वह अगर वेद-विरुद्ध है तो वह त्याज्य है, जो वेदानुकूल है, वही ग्राह्य है । ऋषि दयानन्द का हिन्दू समाज को कहना यह था कि अगर वेद को तुम अपनी संस्कृति का आधार मानते हो, तो इस पैमाने को लेकर चलना होगा । तुम जो चाहो वह वेद नहीं है, वेद जो है वह मानना होगा । इस कसौटी पर कसने से हिन्दू समाज की ९० प्रतिशत रूढियां अपने आप गिर जाती हैं । इस विचारधारा को प्रकट करने के लिए उन्होंने दो शब्दों का प्रयोग किया-आर्ष ग्रन्थ तथा अनार्ष ग्रन्थ । अब तक संस्कृत साहित्य में इस दृष्टि को किसी ने नहीं अपनाया था । संस्कृत के हर ग्रन्थ में जो कुछ लिखा मिलता था वह प्रमाणित मान लिया जाता था । ऋषि दयानन्द ने इस विचार को ठोकर मारकर गिरा दिया ।

तीन प्रकार के अर्थ

ऋषि दयानन्द का कहना था कि वैदिक शब्दों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं–आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक । उदाहरणार्थ-इन्द्र का आधिभौतिक अर्थ अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि हैं, आधिदैविक अर्थ राजा,

सेनापति, अध्यापक आदि दैवीय गुण वाले व्यक्ति हैं, आध्यात्मिक अर्थ जीवात्मा, परमात्मा आदि है। इसी प्रकार अन्य शब्दों के विषय में कहा जा सकता है । इस कसौटी को सामने रखकर अगर वेदों को समझा जाये, तो न उनमें इतिहास मिलता है, न बहुदेवतावाद मिलता है, न जंगलीपन मिलता है, न विकासवाद मिलता है ।

वेदों के जितने भाष्यकार हुए हैं—इस देश के तथा विदेशों के उनमें सबसे ऊंचा स्थान ऋषि दयानन्द का है । अगर वेदों को किसी ने समझा तो ऋषि दयानन्द ने ।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अनेक समाज सुधारक हुए । ऋषि दयानन्द, राजा राम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन इसी युग की उपज थे । वे सब एक तरफ हिन्दू समाज के पिछड़ेपन को देख रहे थे, दूसरी तरफ पश्चिमी देशों की प्रगतिशीलता को देख रहे थे । यह सब देखकर वे हिन्दू समाज को रुढ़ियों की दासता से मुक्त करना चाहते थे । ऋषि दयानन्द तथा दूसरों की विचारधारा में भेद यह था कि जहां दूसरे हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दुत्व को ही समाप्त करने पर तुल गये, वहां ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं को हिन्दू रखते हुए उन्हें नवीनता के नये रंग में रंग दिया । कोई वृक्ष जड़ के बिना नहीं खड़ा रह सकता है । जड़ कट जाये, तो वृक्ष गिर जाता है । जड़ को मजबूत बनाकर जो वृक्ष उठता है वही टिका रहता है ।

कोई समाज अपने भूत के बिना नहीं जी सकता भूत में पैर जमाकर भविष्य की तरफ बढ़ना-पीछे भी देखना, आगे भी देखना-यही किसी समाज के जीवन का गुर है । ऋषि दयानन्द ने इसी गुर को पकड़ा था । पीछे वेदों की तरफ देखो, उसमें जमकर आगे भविष्य की तरफ पग बढ़ाओ, भूत को छोड़ दोगे तो वृक्ष की जड़ कट जायेगी, भविष्य को नहीं देखोगे तो उठ नहीं सकोगे-यह ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश का सन्देश है, यही ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य का सन्देश है । ●

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमे सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्ते-बर्तावें तो जगत् का पूर्णहित होवे । क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है । इस हानि ने जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दु:खसागर मे डुबा दिया है ।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज : चिन्तन-अनुचिन्तन - 35

आर्यसमाज का दायित्व

–स्व० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आर्यसमाज को अनेक कार्य क्षेत्रों में अपने कार्य करने की विधि में कुछ परिवर्तन करने पड़ेंगे । आर्यसमाज व्यक्ति का भी हित चाहता है और समष्टि का भी । आर्यसमाज "आर्यों" की संस्था है, अर्थात् ऐसे व्यक्तियों की जो श्रेष्ठ बनना चाहते हैं । हममें से कोई भी पूर्ण पुरुष नहीं है, और न हो सकता है । शरीर के बंधन में रहनेवाला व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न और सर्वथा निष्कलंक हो ही नहीं सकता, चाहे आचार्य हो, संन्यासी हो, या उपदेशक हो। कुछ कमजोरियां आप में है जो आप से भी अधिक भयंकर कुछ कमजोरियां मुझ में भी है । हम सब प्रलोभनों, व्यसनों और वासनाओं से आच्छादित हैं। अतः हम केवल इतना कर सकते हैं कि परस्पर के सम्पर्क से हम कुछ ऊपर उठ सकें । मैं आर्यसमाज के संगठन में इसलिए आया हूं, कि आपकी सहायता और स्नेहमयी सहानुभूति से कुछ ऊंचा उठ सकूं, और मेरे साथ रह कर शायद आपको भी कुछ लाभ हो सके । इसके लिए आवश्यक है कि मुझे मेरी कमजोरियों के लिए प्यार करे और मैं आपको आपकी कमजोरियों की उपेक्षा करता हुआ, आप में जो कुछ भी अच्छाइयां हैं, उसे लेने का प्रयत्न करूंगा । पुराना ऋषि आचार्य, भी तो अपने शिष्यों से यही कहता था, **'यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि ।"** हममें से कौन ऐसा दूध का धोया है, जिसमें कोई दुश्चरित्र न हो । अतः आर्यसमाज में परस्पर प्रीति से धर्माचरण की चेष्टा करनी चाहिए । इधर हमारी संस्थाओं में एक बीमारी आरम्भ हो गई है–अनुशासन के नाम पर, जिसे भी चाहो निकाल दो। मेरा बस चले तो मैं आपको निकाल दूं, और आपका बस चले तो आप मुझे निकाल दें । मत-वैभिन्य हुआ नहीं कि आपने निकाला । इसका नाम अनुशासन नहीं है और न इसका नाम लोकतन्त्र है । तथाकथित अनुशासन की पद्धति ने ही देश में कांग्रेस जैसी उच्चकोटि की संस्था को निर्बल बना दिया, और इसी पद्धति का अनुसरण करके आर्यसमाज का संगठन भी कमजोर पड़ रहा है । हमने अपने देश में अभी मिल कर साथ काम करना सीखा ही नहीं–यह हमारे लोकतंत्र के रहस्य को ठीक से नहीं समझने के कारण है । आज हममें तीन एषणायें भयंकर आ गई हैं, पद की एषणा, वित्त की एषणा और स्वश्रेयता-भाषण की एषणा । हमारी संस्थाओं की यह बीमारी है । लोग

(शेष पृष्ठ 20 पर)

जन्मशती : स्मरण - 6

इन्द्रस्वामी 'इन्द्रकवि'

आपका जन्म बिहार प्रान्त के सारण जनपद के विष्णुपुरा नामक ग्राम में अप्रैल सन् 1913 में हुआ था । आपके पिता का नाम श्री ठा० बहाली सिंह व माता का नाम श्रीमती मोरमति देवी था । आपका नाम ठाकुर इन्द्रदेव सिंह रखा गया था । सन् 1930 के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने पर आपको छः मास छपरा जेल में रखा गया। आपकी काव्य लिखने और गायन की रूचि प्रारम्भ से ही थी । 1934 से आप आर्यसमाज में भजनोपदेशक के रूप में कार्य करते आ रहे थे । आपने 50 वर्ष की आयु प्राप्त करते ही, वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा लेकर अपना नाम 'इन्द्रमुनि' "इन्द्रकवि" रखा । 75 वर्ष की आयु प्राप्त कर आपने संन्यास आश्रम की दीक्षा लेकर 'इन्द्रस्वामी' "इन्द्रकवि" नाम स्वीकार किया । आपने स्वास्थ्य के कारण 80 वर्ष की आयु तक, अर्थात् 68 वर्ष तक बिहार प्रदेश की आर्यसमाजों में भजनोपदेश किया ।

आपकी प्रथम कविता "सार्वदेशिक" के अक्तूबर-1944 अंक में प्रकाशित हुई थी । आप द्वारा रचित कविताओं, भजनों व लोकगीतों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें-तराने बेदारी, इन्द्र भजनावली, इन्द्र संगीत, इन्द्र गीताञ्जलि (पांच भाग), भोजपुरी लोकगीत (दो-भाग), युग गीत, इन्द्र गीतायन, जागरण गीत, इन्द्र रचनावली आदि प्रमुख हैं । ●

(पृष्ठ 19 का शेष)

प्रभुत्व चाहते हैं, गलत रास्ते से धन कमाना चाहते हैं, और अवसर मिलते ही अपना और अपने स्वकीयों के स्वार्थों को साधना चाहते हैं ।

आज हमारे जीवन पर राजनीति व्यापी हुई है । हमारी राजनीति का पोषण तथा पद की एषणा में होड़ होने लगा है, और कोई भी-राजनीतिक दल, व्यक्ति और समष्टि दोनों दृष्टियों से इन एषणाओं से मुक्त नहीं है । तथाकथित राजनीति में भाग लेने वाले हमारे अग्रगण्य व्यक्ति भी इसी चक्र में फंस गए हैं । राजनीति की कार्य प्रणाली का प्रतिबिम्ब हमारी संस्थाओं पर भी पड़ता है । इसका फल यह हो गया है हमारी अपनी संस्थाओं में भी द्वेष, कलह और अनुचित प्रतिस्पर्धा सर्वत्र देखने को मिल रही है । युवकों को वृद्धों से शिकायत है, वृद्धों को शिकायत युवकों से है । मानों युवक सदा युवक बना रहेगा, कभी वृद्ध होगा ही नहीं, या जो वृद्ध है, वह कभी युवक था ही नहीं । इन बातों पर गम्भीरता से विचार करें । ●

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं०17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र-दिल्ली ।